श्रीकृष्णवल्लभा
श्रीराधा

मृगनयनी तेरे नैंन ते बरबस रस छलकाय।
अवलोके जिस ओर को रस सागर ढुरि जाय।।

प्यारीजू के दृगन में, उमड़त प्रेम समुन्द।
तिन पर रीझत सांवरो, जो पावत एक बुन्द।।

जादू कैसो है भर्यो, इन नैनन के बीच।
कोर दृष्टि के परत ही, रस में देवैं सींच।।

परमपूजनीया
श्री संत माँ ब्रजदेवी जी

• दोहा •

अलक लड़ैती लाड़ली, अलबेली सरकार।
कृपा करहु मम स्वामिनी, बिनवौं बारम्बार।।

• पद •

मो पै कृपा करो श्री राधा।।
निशि दिन तेरो, गुन गन गाऊँ,
छाँडि जगत् की बाधा।।
गुन गन गावत ध्यान लगाऊँ,
ना बिसरूं पल आधा।।
ध्यान लगत ही ओ मेरी स्वामिनि,
निरखूँ रूप अगाधा।।
निरखि निरखि या रूप माधुरी,
छकी फिरूँ सुख साधा।।
ब्रजदेवी की आस यही है,
पावूँ प्रेम अगाधा।।

• भावार्थ •

एक भक्त साधक अपने साधन को प्रगाढ़ करने की लालसा से कहती है, ''हे श्रीराधे ! मेरे ऊपर कृपा करो और ऐसी अहेतुकी कृपा करो कि मैं संसार के प्रपंचों को छोड़कर सदा आपका ही गुन गान करती रहूँ। गुनगान करते समय आपका ध्यान करुँ तथा एक क्षण को भी आपका विस्मरण न हो। हे मम स्वामिनी जू ! आप मेरे ऊपर ऐसी कृपा करो कि ध्यान में आपके उस अलौकिक दिव्य चिन्मय स्वरूप का दर्शन कर मैं आनंद में मग्न हो जाऊँ। सखी ब्रजदेवी की तो बस यही एक मात्र अभिलाषा है कि मैं आपके अगाध प्रेम समुद्र की बूँद को प्राप्त करके ही कृत्य कृत्य हो जाऊँ।''

परमपूजनीया श्री संत माँ ब्रजदेवीजी

प्रेमरस रसिकेश्वरी श्री संत माँ ब्रजदेवीजी इस अशान्त और अंधकारपूर्ण पृथ्वी पर सुख और प्रेम की किरणों को सूर्य की भाँति विखेरती हुई श्री वृन्दावन धाम से पधारी हैं। आपका जन्म एक सुशिक्षित समृद्ध परिवार में हुआ। बाल्यकाल से ही संस्कारवश आपको श्री राधाकृष्ण में अपार अनुराग था। उच्च शिक्षा एवं शास्त्रीय अध्ययन के उपरान्त सद्‌भाव एवं प्रेम बढ़ाने के हेतु संसार के अशान्त स्वरूप को देखकर आपने संसार से और गृहस्थ के बंधनों में न फँसने का निश्चय करके स्वयं को श्री राधाकृष्ण के चरणों में समर्पित कर संतवेश धारण किया। आप विश्व में

शान्ति व सद्भावना का प्रसार उवं साम्प्रदायिक विद्वेष को निर्मूल करने के हेतु देश–विदेशों में भ्रमण करके स्थान–स्थान पर राधाकृपा मंडल स्थापित कर प्रेम भक्ति का प्रचार कर रही हैं। इसी प्रेम भक्ति के द्वारा राष्ट्र में शान्ति, सद्भाव और साम्प्रदायिक विद्वेष समाप्त हो सकता है, ऐसी आपकी मान्यता है, इसी मार्ग से मानवमात्र का कल्याण हो सकता है।

आधुनिक युग की विषम परिस्थितियों में सांसारिक प्राणी को जिस शान्ति और आनन्द की खोज है उसे उपलब्ध करने के मार्ग का शास्त्रों, वेद, पुराण एवं आधुनिक तर्कों के आधार पर पू. माताजी दिग्दर्शन कराती हैं। आपके आध्यात्मिक प्रवचन और भक्ति रसमय कीर्तन से श्रोताओं को आत्म शांति और अनुपम भगवद् रस की अनुभूति होती है। हृदय और

बुद्धि का इतना अनुठा सम्मिश्रण अन्यत्र दुर्लभ है। प्रवचन करते समय उन्हें देखकर कल्पना नहीं होती कि ज्ञान के इस भण्डार के भीतर प्रेम सागर भी उत्ताल तरंगें ले रहा है। और जब श्रीराधाकृष्ण प्रेम में विभोर होकर पदगान करती हैं तो यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि यह वही व्यक्ति है, जो शास्त्रों, वेदों के गूढ़ प्रश्नों का इतनी कुशलता से समाधान कर रहा था। अतः उनके श्रोताओं को बुद्धि एवं हृदय दोनों ही की जिज्ञासा व भूख की तृप्ति होती है। आपके सन्निध्य में भक्तगण सब कुछ भूलकर केवल राधाकृष्णमय हो जाते हैं। आपके सम्पर्क में आकर प्रेमीजन इस अशान्त नश्वर संसार के भौतिकवादी वातावरण में रहकर भी शाश्वत शान्ति एवं भगवद् प्रेमानुभूति की झलक प्राप्त कर रहे हैं।

सचमुच माँ का संग बड़ा ही मधुमय, आनन्दमय और रसमय होता है। आपका क्षण भर का संसर्ग प्रेमियों को संसार से बहुत दूर ले जाता है, जहाँ है केवल आनन्द ही आनन्द और बस आनन्द....।

श्री राधे

वन्दे वृन्दावनानन्दां राधिकां परमेश्वरीम्।
गोपिकां परमां श्रेष्ठांह्लादिनीं शक्तिरुपिणीम्।।
महाभाव स्वरूपां त्वं कृष्णप्रियावरीयसी।
प्रेमभक्ति प्रदे देवि, राधिके त्वां नमाम्यहम्।।

समस्त प्राणी सुख ही चाहते हैं। लेकिन कैसा सुख ? जो हर घड़ी, हर किसी से, हर समय, अनन्त मात्रा का, अनन्त काल के लिए, जो कभी न समाप्त हो। ऐसा सुख हम सब चाहते हैं।

ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो सुख नहीं चाहता। पुण्यात्मा पुण्य करके सुख चाहता है और पापी पाप करके भी सुख ही चाहता है। कोई संसार का व्यवहार करता है तो सुख के लिए, कोई संसार का त्याग करता है तो सुख के लिए।

परन्तु ऐसा सुख कहाँ मिल सकता है ? कौन ऐसा व्यक्ति है जिससे ऐसा सुख प्राप्त हो ? सुख का वास्तविक स्वरूप क्या है ? भगवान आनन्दकन्द सच्चिदानन्द हैं। अखण्ड नित्य सुख स्वरूप हैं। प्रेम के अनन्त अपार महोदधि हैं। प्रेमस्वरूप प्रेमनिधि हैं।

यह जीव प्रेम का अंश है और प्रेम के अंशी श्रीभगवान् सच्चिदानंद परब्रह्म परमात्मा हैं। तथा यह जगत प्रेम नहीं, प्रेम का आभास है। मृग–तृष्णा की तरह, बालू ही जल की तरह दिखती है और उस जल का आभास जो बालू है उसको देखकर प्यासा मृग उसको जल समझ कर जल की इच्छा से उधर दौड़ता है, पर वह प्यासा जलाभास में जलन पाकर गिर पड़ता है और व्याकुल होकर तड़फता है। जगत का सुख नश्वर है। प्राणी इसमें फँसकर दुखों का बोझा उठाता है। मनुष्य सुख की कामना से प्रेरित होकर इस संसार के पाँचो प्रकार के शब्द, रूप, रस,

गन्ध, स्पर्श विषयों की तरफ खिंचता है क्योंकि इन विषयों में जीव मात्र को सुख की झलक दिखाई पड़ती है, परन्तु किसी विषय में सच्चा सुख मिलता ही नहीं। और उस सुख की चाह बुझती नहीं। विषयाभिलाषा बढ़ती ही रहती है इसी तरह की अभिलाषा लेकर प्राणी देह छोड़ता है तथा वह कामना से बँधा हुआ कर्मों के अनुसार विविध प्रकार की ८४ लाख योंनियोंमें जन्म–मरण पाता रहता है।

बाल ब्रह्मचारी सनकादि ऋषियों ने भगवान ब्रह्माजी की उपासना करके उनसे पूछा–हे देव ! परम देवता कौन हैं ? उनकी शक्तियाँ कौन–कौन हैं ? उन शक्तियों में श्रेष्ठ शक्ति कौन सी है ? श्री ब्रह्माजी बोले–पुत्रो ! सुनो ! यह अत्यन्त गुप्त रहस्य है। किसी के सामने प्रकट करने योग्य नहीं है। जिन के हृदय में रस हो, उन्हीं को इसे बताना चाहिये।

भगवान् श्री कृष्ण ही परम त त्त्व हैं। उनका स्वरूप सत्–चित्–आनन्द ब्रह्म है। अथवा जीवशक्ति, मायाशक्ति और स्वरूप शक्ति। स्वरूप शक्ति है अन्तरंगा, मायाशक्ति है बहिरंगा, जीवशक्ति है तटस्था। इन तीनों में अन्तरंगा महत्वपूर्ण है। अन्तरंगा की तीन शक्तियाँ होती हैं। संधिनी, संवित्, और आह्लादिनी शक्ति। यह आह्लादिनी अन्तरंगभूता ''श्री राधा'' हैं। जो श्री कृष्ण के द्वारा आराधिता हैं। श्रीराधा भी कृष्ण का सदा समाराधन करती हैं, अतः वे 'राधिका' कहलाती हैं। श्री कृष्ण परमाह्लाद स्वरूप होकर भी जिसके द्वारा स्वयं आह्लादित होते हैं और दूसरों को आह्लादित करते हैं उसका नाम है 'आह्लादिनी शक्ति'।।

आनंद की आह्लादिनि स्यामा,
आह्लादिनि के आनँद स्याम।
सदा सरवदा जुगल एक मन,
एक जुगल तन विलसित धाम।।

आह्लादिनी शक्तिरूपी दूध को जमा करके मक्खन निकाला गया उसका नाम है 'प्रेम'। प्रेम के भी सारतत्व का नाम 'महाभाव' यह महाभाव स्वरूपा हैं श्री राधा ठकुरानी। 'सत्' से संधिनी, जिससे भगवान् स्वयं की सत्ता तथा समस्त जीवों की सत्ता की रक्षा करते हैं। संधिनी शक्ति 'वृन्दावन' बनी हैं। धाम, भूषण, शैय्या, आसन, मित्र, सेवक आदि में परिणत होती है। यह भगवान् की बहिरंगा शक्ति है। चित् से संवित शक्ति। समस्त लीलाओं की व्यवस्थापिका 'योगमाया' है। यह सत्त्व, रज, तमोमयी है। ये तीन माया के गुण हैं। यह भगवान् की अन्तरंगा शक्ति है। यही माया अविद्या रूप से जीव के बंधन का कारण है। श्रीकृष्ण ज्ञान स्वरूप होकर भी जिसके द्वारा जान सकते हैं और दूसरों को ज्ञान युक्त करते हैं। उसका नाम है संवित शक्ति। यह परा शक्ति है।

श्री कृष्ण आनन्द के घनीभूत श्री विग्रह हैं। श्री राधा प्रेम की घनीभूत मूर्ति हैं। जहाँ प्रेम है, वहीं आनन्द है। श्री कृष्ण ही श्री राधा के जीवन हैं और श्री राधा ही श्री कृष्ण की जीवन स्वरुपा हैं।

इन आह्लादिनी शक्ति की लाखों करोड़ों वृत्तियाँ (कायव्यूहरूपा गोपांगनाओं) के रूप में प्रकट हैं जो प्रतिपल श्री राधा कृष्ण की सेवा तथा उनके सुख संवर्धन में लगी रहती हैं।

भगवान् श्री कृष्ण ही एक मात्र रस हैं और यह सारा संसार उन दिव्य मधुरातिमधुर रस का ही सारा विस्तार है। नित्य एक ही नित्य दो बने हुए लीला–रस का वितरण तथा आस्वादन करते रहते हैं। एक परमात्मा दो नाम रूप श्री राधा तथा श्री कृष्ण विग्रह में प्रकट हैं। जैसे एक ही व्यक्ति दर्पण में दृश्यमान अपने ही द्वितीय रूप के सह हाव–भाव चेष्टादि क्रीड़ा

कर आंनदित होता है। वैसे ही नित्य सौन्दर्य माधुर्य रस का आस्वादन करने के लिए पूर्ण ब्रह्म, आप्तकाम, अकाम श्री राधा रूप में अपने को व्यक्त किये हुए हैं।

श्री राधा पूर्ण शक्ति हैं, तो श्री कृष्ण पूर्ण शक्तिमान हैं। श्री राधा प्रकाश हैं तो श्री कृष्ण भुवन भास्कर हैं। श्री राधा ज्योत्सना हैं, तो श्री कृष्ण पूर्ण चन्द्र हैं। दोनों एक स्वरूप हैं, जैसे दूध में धवलता, पृथ्वी में गन्ध, अग्नि में दाहिका शक्ति। सृष्टि की रचना में भी श्री राधा उपादान बनकर श्रीकृष्ण के साथ रहती हैं। श्रीराधा सृष्टि की आधार रूपा हैं और श्रीकृष्ण उसका अच्युत बीज हैं। जड़ चेतनमय सारा संसार श्री राधा कृष्ण का ही स्वरूप है। सबको इन्हीं दोनों की विभूति समझो।

श्री राधा एवं श्री कृष्ण एक ही सत्ता, एक ही तत्त्व हैं। लीला के हेतु दो स्वरूप धारण किए रहते हैं।

जब भगवान् श्री कृष्ण का इस पुण्यभूमि में आविर्भाव होता है, तब श्री राधा भी लीला के लिये प्रकट हुआ करती हैं। द्वापर के अंत में गोपराज श्री वृषभानु और श्री कीर्तिदा रानी के घर इनका मंगल प्राकट्य हुआ। भाद्रपद शुक्ल अष्टमी, शुभ अभिजित नक्षत्र में, अजन्मा श्री राधा ने जन्म लिया। साक्षात् रस प्रदायिनी, श्री कृष्ण की प्राणाधिका रास रस रसिकेश्वरी का प्राकट्य हुआ। रस की सरिता बहाने को हुआ। श्रीकृष्ण जो साक्षात् मन्मथ–मन्मथ हैं उनका मन मथने को हुआ। इनका प्राकट्य परम चरम त्याग का, सर्वसमर्पण का उज्ज्वलतम प्रेम का स्वसुखवाञ्च्छा विरहित, प्रेम का स्वरूप कैसा होता है, यह सिखाने को हुआ है। उन्होंने अपने प्रत्यक्ष जीवन में इसका एक नित्य चेतन मूर्तिमान उदाहरण स्थापित किया है। श्रीराधा रानी का जन्म एक अपूर्व दान है। इसलिए यह दिन धन्य है।

श्री राधारानी का यह मंगल विग्रह सर्वदा दिव्य है। जैसे भगवान् श्रीकृष्ण नित्य अनादि हैं वैसे ही श्रीराधारानी भी नित्य अनादि हैं। लेकिन श्रीकृष्ण एवं श्रीराधा का श्रीविग्रह असाधारण, अलौकिक एवं अप्राकृत है, नित्य सच्चिदानन्दमय है, जन्म–कर्म दिव्य है। वे तो इस धरा को परम पवित्र करने के लिए अपनी प्रकृति में अधिष्ठित होकर अपनी निज माया (योगमाया) से प्रकट होते हैं।

'राधा' शब्द का अर्थ जिसकी श्रीकृष्ण आराधना करें। राधा नाम के पहले अक्षर 'र' का उच्चारण करते ही करोड़ों जन्मों के संचित पाप और अशुभ कर्मों के भोग नष्ट हो जाते हैं। आकार 'ा' के उच्चारण से आयु की वृद्धि होती है। जीव बन्धन से मुक्त हो जाता है

दो.–'रा' शब्दोच्चारणाद्भक्तो रतिमुक्ति सुदुर्लभाम्।
'धा' शब्दोच्चारणाद्वर्गे धावत्येव हरेः पदम्।।

दो.–'रा' इत्यादानवचनो 'धा' च निर्वाणवाचकः।
यतोऽवाप्नोति मुक्तिं च सा च राधा प्रकीर्तिता।।
दो.–'रा' शब्दं कुर्वतरन्नस्तो ददामि भक्तिमुत्तमाम्।
'धा' शब्दं कुर्वतः पश्चाद् यामि श्रवण लोभतः।।

श्रीकृष्ण कहते हैं–जिस समय मैं किसी के मुख से केवल 'रा' सुन लेता हूँ, उस समय आनन्द में भरकर अपने कोष की बहुमूल्य सम्पत्ति मेरी भक्ति, मेरा प्रेम उसे दे देता हूँ। फिर भी मन में भयभीत होता हूँ, कि मैं इसको उचित पुरस्कार तो नहीं दे सका। जिस समय वह 'धा' का उच्चारण करता है उस समय यह देख कर कि वह मेरी प्रिया का नाम ले रहा है, मैं उसके पीछे पीछे चल पड़ता हूँ। केवल नाम–श्रवण के लोभ से यह राधा नाम मेरे कानों में उनकी स्मृति की सुधा धारा बहा देता है। मेरे प्राण शीतल रसमय हो जाते हैं।

श्रीकृष्ण का सौन्दर्य, उनका रूप कोटि–कोटि कामदेवों के सौंदर्य पर विजय प्राप्त कर चुका है, पर श्रीकृष्ण के नेत्र श्रीराधा के अप्रतिम रूप सौंदर्य का दर्शन करके ही शीतल होते हैं। श्रीकृष्ण की वंशी–ध्वनि चतुर्दश भुवनों को आकर्षित करती है पर श्रीकृष्ण के कान श्रीराधा के वाक्य सुधापान से ही तृप्त होते हैं। श्रीकृष्ण के दिव्य अंग गन्ध से जगत् सुगन्धित होता है। परन्तु श्रीकृष्ण के घ्राण नित्य श्रीराधा के अंग सुगन्ध के लोभी बने रहते हैं। साक्षात् रसरूप रसराज श्रीकृष्ण के रस से जगत् सुरक्षित है परन्तु श्रीकृष्ण राधारानी के अधर रस के वशीभूत हैं। श्रीकृष्ण का स्पर्श कोटि कोटि सुशीतल है परन्तु उनके अंग सुशीतलता प्राप्त करते हैं श्रीराधारानी के अंग स्पर्श से।

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
'आत्माराम' इति प्रोक्तो मुनिभिर्गूढ़वेदिभिः।।

(स्कन्द पुराण)

''श्रीराधिका भगवान् श्रीकृष्ण की आत्मा हैं। उसमें सदा रमण करने के कारण ही रहस्यरस के मर्मज्ञ ज्ञानी पुरुष श्रीकृष्ण को 'आत्माराम' कहते हैं।

श्रीकृष्ण अवतार में श्रीराधारानी आत्मा बन गईं। जैसे हमारा शरीर मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार (अन्तःकरण) सदा आत्मा को प्रसन्न करने में प्रयत्नशील रहता है, इसी प्रकार शरीर रूपी भगवान् श्रीकृष्ण सदा आत्मा स्वरूपा श्रीराधारानी को प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं। आत्मा मालिक है शरीर दास माना जाता है। इसीलिए श्रीकृष्ण दास माने जाते हैं राधारानी उनकी स्वामिनी मानी जाती हैं।

गहबर बन की कुंज में अचरज देख्यौ जाय।
कुसुम सेज पौढ़ी लली, ब्रह्म पलोटत पाय।।

वृन्दावन में एक स्थान है सेवाकुंज। वहाँ मंदिर में एक चित्रपट की सेवा होती है। उसमें आज भी यह

भावना है कि श्रीकृष्ण के साथ रास करके, सुकुमारी प्रियाजू थक गई हैं क्योंकि ठाकुरजी दास हैं तो दोनों हाथों से चरण सेवा कर रहे हैं। और इसी झांकी की दिनरात पूजा होती है। यह ब्रज का विशेष रस है।

एक बार एक रसिक पहुँच गये बरसाने के गहवर बन में, वहाँ उन्होंने एक आश्चर्य देखा।

लख्यौ सखी कौतुक बड़ौ, गहबर गलियन मांहि।
ब्रह्म श्याम निज मुकुट ते, देत बुहारी जांहि।।

ब्रह्म श्याम निज मुकुट से झाड़ू लगा रहे हैं। जो भगवान् योगियों की समाधि में भी जल्दी नहीं जाते, पंडितों के वेदमंत्रों के बुलाने से भी नहीं जाते, वे अपने निज मुकुट से झाड़ू लगा रहे हैं। कहाँ ? बरसाने के गह्वर वन में। आप जिस चीज को माथे पर धारण करते हो, पगड़ी, उसको इतनी जल्दी किसी के पैर में नहीं रखते, अगर रखते हो यानि भारी

मान दे रहे हो। उसके प्रति समर्पण कर रहे हो। प्रश्न है क्यों लगा रहे हैं ? भगवान् इस लिए लगा रहे हैं, क्योंकि जब श्रीराधारानी पधारें तो उनके पैर में कोई कंकड़ पत्थर न चुभ जाए। सखियाँ यद्यपि बुहारी लगा चुकी हैं फिर भी श्यामसुन्दर लगा रहे हैं। जब अधिक प्यार होता है तो मन करता है अपने हाथ से सेवा करने का। नौकर खाना बनाता है फिर भी माँ का मन नहीं मानता, जब तक अपने हाथ से न कर ले। इसीलिए ठाकुर जी झाड़ू लगा रहे हैं यह ब्रज का विशेष रस है।

लोगों के मन में प्रश्न आता है। राधाकृष्ण का विवाह हुआ कि नहीं ? नासमझी का सवाल है। क्योंकि राधारानी पत्नी मात्र नहीं है। हम समझते हैं कि स्त्री–पति का रिश्ता सबसे नजदीक का होता है। लेकिन भगवान् न करे आप यहाँ बैठे हैं कोई साँप

निकल आए आप, सबसे पहले आप अपने को बचाओगे। बाद में ख्याल आयेगा मेरी पत्नी कहाँ है ? बच्चा कहाँ है ? तो सबसे ज्यादा प्यार आप अपने आप से करते हैं। शरीर से ज्यादा प्यार अपने मन से करते हैं। शरीर को कष्ट हो रहा है, परन्तु अगर मन को अच्छा लगता है तो हम शरीर की परवाह नहीं करते हैं। मन से अधिक हम अपनी बुद्धि से प्यार करते हैं। अगर हम को डायबिटिज़ है, मन कहता है रसगुल्ला खा लो, देखा जायगा। बुद्धि कहती है, ना, बीमार पड़ोगे। तो हम मन को खाने से रोकते हैं। बुद्धि से भी ज्यादा हम अपनी आत्मा से प्यार करते हैं। अब सोचिए स्त्री पति कहाँ रह गये ? यानि महाभाव स्वरूपा श्रीराधारानी श्रीकृष्ण की **personal** में **personal** में **personal power** का नाम है। इस लिए स्वामिनी अलबेली सरकार मानी जाती है। श्रीकृष्ण दास माने जाते हैं।

अब प्रश्न है कि श्रीराधारानी को अलबेली सरकार क्यों कहा गया है ? इन्हें, क्योंकि इनके दरबार में दुनियादारी का कोई कानून लागू नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्ण तो कानून से बँधे हैं। उन्होंने गीता में कहा है **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांसतथैव भजाम्यहम्'** जो जीव जिस मात्रा में मेरे शरणागत होता है उतनी मात्रा में मैं उसका योगक्षेम वहन करता हूँ। मतलब ठाकुरजी के दरबार में हिसाब किताब है। जिस समय द्रोपदी का चीर खींचा जा रहा था कौरवों की सभा में, द्रोपदी ने अपने पाँच पतियों की ओर देखा। भरोसा था, रक्षा करेंगे। बड़े शक्तिशाली उन पाँच पतियों ने गर्दन नीची कर ली सभा में। उनका सहारा छूटा। बड़े–बड़े धर्म के आचार्य बैठे थे। द्रोपदी ने सोचा कि इनके रहते मुझे कुछ नहीं हो सकता। उन्होंने भी नजर नीची कर ली। सोचा अब अपने आप मैं अपनी

लज्जा की रक्षा करूँ। उसने दाँतों के बीच साड़ी दबा ली। इधर भगवान् श्री कृष्ण द्वारिका में बैठे खाना खा रहे थे लेकिन खा नहीं पा रहे थे। रुक्मिणीजी ने पूछा कि आप खा क्यों नहीं रहे हो ? मुँह का कौर मुँह में, हाथ का कौर हाथ में। श्रीकृष्ण ने कहा मेरे भक्त के ऊपर संकट आ पडा है। रुक्मिणीजी ने कहा आप जाते क्यों नहीं ? ठाकुरजी कहते हैं। कितनी बार मैंने कहा है **''मामेकं शरणं ब्रज''** लेकिन मेरे भक्त को अपना भरोसा है, जाऊँ तो कैसे जाऊँ ? यानि शरणागति अभी पूरी नहीं है। अब जब दुःशासन ने सारी को झटका दिया तो सारे सहारे छूट गये। जब तक अन्य का भरोसा है तब तक अनन्यता नहीं है। जब सब कुछ करना बंद कर दिया शरणागति हो गई, हाथ ऊपर उठा लिये **''हा कृष्ण द्वारिकावासी''** पुकारा तब तुरंत प्रभु ने अंबर अवतार धारण किया। कहीं से

आना जाना थोड़े ही पड़ता है उनको, हृदय में बैठे हुए हैं अतः साड़ी बन गये। अतः पुरुष होने के नाते ठाकुर का हृदय कुछ कठोर हो सकता है लेकिन राधारानी का अवतार तो हम जीवों पर कृपा करने के लिए हुआ है। वे जगत जननी, जगदम्बा हैं। अगर आप श्रीकृष्ण का प्रेम प्राप्त करना चाहते हैं तो श्रीकृष्ण के पास उनका प्रेम तो है ही नहीं। भगवान् के प्रेम की कोषाध्यक्षा तो हैं श्रीराधा। प्रेम प्रदान करना ही इनके अवतार का प्रयोजन है। अगर श्रीकृष्ण का प्रेम प्राप्त करना है तो श्रीराधारानी का प्रेम प्राप्त कर लो तो ठाकुरजी का अपने आप मिल जायेगा। एक रसिक कहता है हे प्रभु आपको मैं दूँ तो क्या दूँ ? हाँ आपके पास आप का मन नहीं है। वो अगर आप मेरा ले लें, तो आप का भी काम बन जाय और मेरा भी। जब हनुमान जी सीताजी की खोज में

जा रहे थे, तब श्रीरामजी ने संदेश भेजा कि हनुमान मेरी सीते से कहना–

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा, जानत एक प्रिया मन मोरा।
सो मन रहत सदा तोहिं पाहीं, जान प्रीतरस इतने ही मांही।

मतलब ठाकुरजी का मन किशोरीजी के पास है और प्रेम मन में रहता है। माँ का हृदय बड़ा कोमल होता है। बेटा नालायक होता है तो पिता उसे घर से निकाल देता है। लेकिन माँ ? उससे चोरी–चोरी मिलती है। रुपया देती है, रक्षा करती है। तो हम और आप नालायक बेटे हैं। साधनहीन हैं। दीन हैं, अकिञ्चन हैं। कोई साधन का बल नहीं। इसलिए श्रीराधारानी के दरबार में हमारी दाल गल जायेगी। उनका अवतार ही जीवों पर कृपा करने के लिए हुआ है।

हित अधम उधारन देह धरे, बिनु कारन दीनन नेह करें।।
जब ऐसी दया दरबार, फिकर मोहे काहे को।।

श्रीराधारानी परम प्रेम स्वरूपा हैं। प्रेम का स्वभाव ही है अपने में प्रेम का अभाव दिखाना, अपने को दोषों से भरे दिखाना और प्रियतम को सर्वगुण सम्पन्न, परम प्रेमी सौन्दर्य माधुर्य तथा गुण–गौरव में प्रतिक्षण वर्धमान दिखाना। तभी तो प्रेम ''प्रतिक्षण वर्धमानम्'' कहा गया है। लेकिन आज के इस स्वार्थ कलुषित संसार में प्रेम शब्द का अर्थ प्रायः माना जाता है कि हम जिसमें प्रेम करते हैं, वह हमें सुख दें। हमारे मनोरथ पूर्ण करें। हमारे मन के अनुकूल व्यवहार बर्ताव करें। त्याग करें हमारे लिए। हमारे प्रेम ऋण का अधिक से अधिक बदला चुकायें। संसार में कोई भी कुछ भी, न तो नित्य प्रिय होता है, न ही किसी से सदा प्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती है। वहाँ कुछ दिनों के व्यवहार के बाद किसी न किसी समय उससे मन हट जाता है, पत्नी का संग भी पति को हर समय

अच्छा नहीं लगता। पुत्र के प्रति पिता में भी कुभाव आ जाते हैं। बहुत दिनों के बीमार जो अत्यन्त आत्मीय हों उससे भी मन ऊब जाता है। घरवाले यहाँ तक मनाने लगते हैं कि अब तो ईश्वर इसकी सुन ले। ये भी सुखी हो जाँय, घरवाले भी। बन्धुबान्धव, इष्ट मित्रों का त्याग तो मन की प्रतिकूलता में तुरन्त हो जाता है। संसार में सभी अपने मन के अनुकूल अपना सुख चाहते हैं। जहाँ तक सुख मिलता है या मिलने की आशा रहती है वहाँ तक मित्रता रहती है। परन्तु जहाँ दुख दिखाई देता है, वहीं प्रियता नष्ट हो जाती है। विशुद्ध प्रेम में वासना का लेश भी नहीं रहता। श्रीराधारानी एवं उनकी श्रीगोपांगनाओं ने प्रेम के स्वरूप में दूसरा ही अर्थ अपने ही जीवन में चरितार्थ किया। उन्होंने दिया ही दिया, पर उन्होंने देने को लेना ही माना। इसी से उनका देना इतना मधुरातिमधुर

है कि पूर्णकाम, भगवान् भी लालायित मन से उसे लेते रहते हैं। यह है विशुद्ध प्रेम। प्रेमास्पद प्रेमी का आदर करें, यह बात तो दूर रही। चाहे उसके प्रेम को जाने ही नहीं, चाहे अपमान करे, तिरस्कार करे, फिर भी रोष न आये। दोष भी उनका न दिखाई दे। प्रेम तथा आत्मीयता के ही दर्शन हों। त्याग की जहाँ ऐसी पराकाष्ठा है, वही विशुद्ध प्रेम है। इस विशुद्ध प्रेम की प्राप्ति के लिए हृदय का द्रवित होना आवश्यक है इसके लिए श्रीरूप गोस्वामी ने ये साधन बतलाये हैं। सहनशीलता या बुरा करने वाले का भी भला करने की चेष्टा भगवच्चर्चा, भगवत्सेवा, सत्संग, सदाचरण में लगे रहना। व्यर्थ समय तनिक भी न खोना भोग विषयों में आसक्ति न रखना, अभिमानशून्यता, भगवत्कृपा एवं भगवत्प्रेम की प्राप्ति अवश्य होगी—ऐसी दृढ़ आशा। भगवान् से मिलने की उत्कृष्ट लालसा भगवान्

के नामगान में सदा रुचि, गुण—लीला श्रवण—कथन में आसक्ति लीला स्थलों में प्रीति, जिनमें ये लक्षण हों, समझना चाहिए भगवान् के प्रेम का अंकुर उसके हृदय में उत्पन्न हो गया है।

श्रीराधा बड़ी उदारता के साथ नित्य निरंतर भाव का प्रवाह बहाती रहती हैं। वे सर्वथा त्यागमयी हैं। स्व—सुख की वासना है ही नहीं। केवल श्रीकृष्ण सुख कामना है। साथ ही वे यह भी चाहती हैं कि जैसे मेरे द्वारा प्रियतम श्रीकृष्ण को सुख होता है, वैसे ही मेरी काव्यव्यूह रूपा समस्त गोपागंनाओं के द्वारा भी उन्हें सुख मिले और उनके सुख से वे सब सखियाँ भी परम सुखी हों। वे श्रीकृष्ण को केवल अपनी ही वस्तु मानकर उनको अपने ही प्रणय कक्ष में बन्द नहीं रखतीं, बल्कि वे सब के सुख की वस्तु बनाकर वे सबको सुखी करना चाहती हैं। कैसा महान आदर्श

त्याग है। इसलिए रासमण्डल में असंख्य गोपांगनाओं का समावेश है और असंख्य रूपों में प्रत्येक दो दो गोपियों के बीच में अगणित रूपों में प्रकट होकर श्रीकृष्ण उनके विशुद्ध प्रेम का रसास्वादन करा रहे हैं। श्रीराधा का यह श्याम प्रेम सीमित नहीं है। वह अनन्त है और वे उसका वितरण करके परम सुखी होती हैं। वे हर समय सचेत और सचेष्ट रहती हैं कि उनकी सखियाँ भी उन्ही की भाँति प्रियतम सुख का आस्वादन करें।

समस्त सौन्दर्य की एक मात्र निधि होने पर भी अपने को सौन्दर्य रहित मानती हैं पवित्रतम सहज सरलता, उनके स्वभाव की सहज वस्तु होने पर भी वे अपने में कुटिलता तथा दम्भ के दर्शन करती हैं और अपने को धिक्कार देती हैं। वे अपने में त्रुटि देखती हैं।

श्रीराधा का जीवन ही प्रियतम सुखमय है। वे केश सँवारती हैं वेणी में फूल गूँथती हैं, मालती की माला पहनती हैं, वेश–भूषा साजशृंगार करती हैं, केवल श्रीकृष्ण को सुखी करने, सुस्वाद भोजन पान अपने शरीर की पुष्टि के लिए नहीं, दिव्यगन्ध का सेवन आनन्द के लिए नहीं, सुन्दर पदार्थों का निरीक्षण नेत्रों को तृप्त करने को नहीं, मधुर संगीत सुनती चलती, फिरती, सोती, जागती वे सब कुछ करती हैं केवल अपने प्रियतम को सुख पहुँचाने के लिए। प्रेमी देना जानता है लेना नहीं। उनके जीवन का प्रत्येक कार्य, चेष्टा, विचार, कल्पना प्रभु को सुखी करने के लिए होता है। सेवा ही उनके जीवन का स्वभाव है उनके लिए सर्वस्व त्याग सहज होता है उनका पवित्र प्रेम सदा बढ़ता रहता है क्योंकि वह कामनापूर्ति के लिए नहीं होता है प्रेम में ही रमण करता है संतुष्ट रहता है।

प्रेम भक्ति का चरम स्वरूप श्रीराधा भाव है रति, प्रेम, प्रणय, मान, स्नेह, राग, अनुराग और भाव इस प्रकार उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ पवित्र प्रेम अंत में जिसस्वरूप को प्राप्त होता है, उसे महाभाव कहा गया है और महाभाव स्वरूपा श्रीराधा ठकुरानी है।

श्रीराधा कृष्ण का भावराज्य अतिशय पवित्र है। जहाँ लीला विहार निरंतर होता रहता है। लीला का महान मधुर सागर सदा उछलता रहता है। स्वयं नटनागर श्रीकृष्ण ही भाव लहरियाँ बनकर खेलते रहते हैं। इस भाव राज्य में ज्ञान–विज्ञान छिपे रहकर इस लीला–रस–रंग को देखते रहते हैं इस भावराज्य में निवास करने वाली सेवा की जीती जागती मूर्ति दिव्य सखी सहचरी मञ्जरियाँ है, जो अति श्रद्धा के साथ उनकी चरण–रज सेवन करती हैं। अपने रसयुक्त हृदय को उज्ज्वल भावों से भरती हैं। जो तुच्छ घृणित

भोगों से विरक्त रहता है, जिसका हृदय निरन्तर श्रीराधाकृष्ण के चरणों में आसक्त रहता है। वही किसी सखी सहचरी मंजरी की कृपा से ही कृपाकण प्राप्त कर सकता है, तथा इस परम भावराज्य की सीमा में प्रवेश कर सकता है। श्रीराधा कृष्ण की दिव्य लीलाऐं जो यथार्थ रूप से यथा साध्य समझकर स्मरण करता है उसके समस्त दुर्गण, दुर्विचार का विनाश होता है।

श्रीराधारानी के अनन्त गुणों का गान तथा उनके भावों का जितना स्मरण किया जाय, उतना ही हमारा परम सौभाग्य है, उन्हीं से कातर प्रार्थना करनी चाहिये। उनकी ही कृपा से उनके स्वरूप का परिचय प्राप्त हो सकता है। संत बताते हैं कि भावराज्य में हम इस कामकलुषित शरीर से प्रवेश नहीं कर सकते। केवल संतों की कृपा से, गुरुदेव की कृपा से, हम

अपने सूक्ष्म देह से सखी रूप में अपने आप को सजा सँवारकर युगल की सेवा में ले जा सकते हैं।

यहाँ न भौतिक जगत है, न भौतिक शरीर, न भौतिक क्रिया कलाप।

श्रीराधाजी की पूजा किये बिना मनुष्य श्रीकृष्ण की पूजा के लिये अनधिकारी माना जाता है। इसलिए जीव मात्र का कर्तव्य है कि वे श्रीराधाजी की पूजा अवश्य करें। श्रीराधाजी श्रीकृष्ण की प्राणाधिका हैं। भगवान् इनके अधीन रहते हैं अतः हमें श्रीराधा के पावन पाद–पद्मों में श्रद्धा भक्ति पूर्वक उनके पवित्र दिव्य प्रेमकण प्राप्त करने के लिए विनम्र प्रार्थना करनी चाहिए।

हमारे गुरुदेव बताते हैं कि उस अमूल्य श्याम प्रेम का मूल्य केवल पवित्र आँसुओं की धारा है। सब कुछ उन्हीं को समर्पण कर सब कुछ उन्हीं का

समझकर उन्हीं के प्रेम से उन्हीं के लिए जो निरंतर प्रेमाश्रुओं की धारा बहाते हैं बस वह पवित्र अश्रुजल ही उनके प्रेम को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय हैं। जितने आँसू बहेंगे उतना हृदय कोमल होता जायेगा।

जिन खोजा तिन पाईयाँ गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी देखन गई, रही किनारे बैठ।।
हंसि हंसि कंत न पाइये जिन पाया तिन रोय।।

जैसे कपड़े धोने के लिए पानी की जरूरत होती है, ऐसे ही हृदय के मैल को धोने के लिए आँखों के जल की आवश्यकता होती है। जितना जितना आँसू बहेंगे उतना उतना हृदय निर्मल होगा शुद्ध होगा उतना उतना भगवान् आकर के विराजमान होते चले जायेंगे। इस प्रकार हमेशा के लिए माया के अज्ञान की निवृत्ति हो जायेगी। त्रिताप का नाश, त्रिदोष की निवृत्ति पंचकोष का जरन, पंचक्लेश का नाश हमेशा

के लिए परमानन्द की प्राप्ति ऐसा आनन्द मिल जायेगा जो कभी छिनेगा नहीं। ऐसा चस्का लग जायेगा कि पीये बिना मन लगेगा नहीं। परमात्मा तो बाट देख रहे हैं कि कब जीव मेरी ओर नजर उठाकर देखे और मैं उसे अपने बाहों में भरकर मालामाल कर दूँ। यह है साधना का स्वरूप।

दो.—गोपी पद रज सिर धरूँ, यही जीवन की आस।
हे गोपीजन वल्लभे, पुरवौ मम अभिलास।
दो.—आठ प्रहर चौंसठ घरी, मेरे और न कोय।
नैनन मांही तू बसै, नींदहि ठौर न होय।।

श्री वृषभानु दुलार, हमारी सुधि लीजो।।
करुणामयी कृपालु किशोरी,
कोर कृपा की कीजो।।
क्यों सुधि भूलि गई ममतामयी,
इहै भीख मोहि दीजो।।
सखि परिकर संग जब दोऊ बिहरौ,
तब मोरी सुधि लीजो।।
निज सहचरि कहँ नैन सैन दे,
कछुक टहल मोहिं दीजो।।
तनिक कृपा की कोर सों राधे,
बड़भागिन मोहि कीजो।।
ब्रजदेवी पुनि पुनि बलिहारी,
अपुनी मान मोपै रीझो।।

भावार्थ—सखी भाव भावित, अपनी आराध्या श्रीलाडली जू से इनकी कृपा दृष्टि, कृपा कोर, कृपा दुलार पाने के लिये एवं उनके ह्रदय में, अपनी याद दिलवाने की विनती करती है कि, ''हे श्री वृषभानु दुलारी ! आप तो करुणामयी सहज कृपालु हैं, तनिक मेरे ऊपर भी अपनी दृष्टि करना। कभी हमारी भी सुधि कर लिया करना। हे ममता मयी ! आपने मुझे क्यों बिसार दिया ? आप तो अकारण करुणावरुणालय हैं। मैं आपसे, अपना आंचल पसार कर, भीख मांगती हूँ कि जब भी आप अपने प्रियतम श्याम सुन्दर एवं, अपनी नित्य परिकर सहचरी सहित वृन्दावन की कुंजों में विहार करें तो, किसी भी प्रकार की सेवा के निमित्त, मेरी याद कर लिया करें तथा अपनी सहचरियों को, अपने नैन सैन से ही बताकर कोई भी सेवा मुझे प्रदान करें। रसिक ब्रजदेवी कहती हैं, हे श्री राधे ! तनिक हमारे ऊपर भी कृपामय रसधारा बरसा कर, हमें बड़भागिन होने का सौभाग्य प्रदान करें।''

❑ **संकलनकर्त्री**
साध्वी प्रिया दासी

❑ **प्रकाशक**
ब्रजांचल ट्रस्ट
ब्रज.....जन जन को अपनी स्नेहिल छाँव में लेनेको समर्पित.....**आँचल**

❑ **सौजन्य**
शिल्पा—आशीष गोयल

❑ **द्वितीय संस्करण**
११०० प्रतियाँ
१ जनवरी २००८

❑ **मुद्रण-संयोजनः**
श्रीहरिनाम प्रेस, बाग बुन्देला, लोई बाजार, वृन्दावन
✆ : ०५६५—२४४२४१५